SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

किरातार्जुनीय (उपजीवक) का उपजीव्य काव्य से साम्य–वैषम्यः एक अवलोकन

पिंकी निशा, पी.–एचडी., संस्कृत विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
पिंकी निशा, पी.–एचडी.
E-mail : nishamrit2020@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 12/06/2025
Revised on : 13/08/2025
Accepted on : 22/08/2025
Overall Similarity : 00% on 14/08/2025

शोध सार

'वृहत्त्रयी' के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य के तीन महाकाव्य। परिगणित किये जाते हैं: भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध, श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित, किरातार्जुनीय महाकवि भारवि रचित एक सशक्त और गंभीर रचना है। यह 6वी शताब्दी के आस–पास लिखी गई है, जिसका अंगी रस वीर रस है इसकी कथा का मूल स्रोत महाभारत है। महाभारत के वनपर्व के छोटे से प्रसंग का विस्तार है, अर्थात् महाभारत के वनपर्व का सताइसवें अध्याय से लेकर इकतालीसवे अध्याय तक की कथा किरातार्जुनीय उपजीव्य काव्य है। वनपर्व की कथा नितान्त नीरस एवं शुष्क है। भारवि ने उसी नीरस कथानक को अपनी प्रतिभा के द्वारा अति सरस बना दिया है। इसमें युधिष्ठिर और भीमसेन के बीच हुए संवाद का बहुत सुंदर वर्णन किया गया है। किरात वेशधारी शिव अर्जुन की परीक्षा लेने जाते हैं, वराह पर शिव और अर्जुन बाण–प्रहार करते हैं। दोनों का युद्ध होता है, और अन्त में युद्ध से प्रसन्न होकर शिव पाशुपत–अस्त्र अर्जुन को प्रदान करते हैं, यही कथा का सार है।

मुख्य शब्द

वृहत्त्रयी, महाभारत, किरातार्जुनीय, भारवि, भीमसेन, क्षात्रधर्म.

प्रस्तावना

प्रत्येक साहित्य में प्रतिभाशाली कवियों की लेखनी से प्रसूत कतिपय ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं,जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तरकालीन कविगण अपने काव्यों को सजाया करते हैं। ऐसे काव्यों को हम व्यापक प्रभावसम्पन्न होने के कारण 'उपजीव्य काव्य' के नाम से पुकारते हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य संस्कृत साहित्य की धरोहर है। उत्तरवर्ती कवियों ने इनसे प्रेरणा लेते हुए अपनी मनीषा से युक्त नए रचना को जन्म दिया। ऐसे

उपजीव्य काव्य संख्या में बहुत है, परन्तु तीन सर्वप्रमुख हैं –रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत। इन तीनों का बाद के काव्य–साहित्य के ऊपर बड़ा ही विशाल, प्रभाव पड़ा है। किरातार्जुनीय महाकाव्य भारवि रचित एक सशक्त रचना है जिसमें वीर रस की उद्भावना हुई है। महाभारत का वनपर्व इसका उपजीव्य है। इसमें उपजीवक–उपजीव्य के साम्य–वैषम्य का अवलोकन करने किया गया है, और किरातार्जुनीय से सम्बंधित कुछ नए मानक स्थापित करने की कोशिश हुई है। एक तरह से किरातार्जुनीय में महाभारत (वनपर्व) के सताइसवें अध्याय से लेकर इकतालीसवे अध्याय का पूर्ण विस्तार मिलता है,जिसमें भारवि ने अपनी अद्भुत काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है।

शोध–भूमि

महाभारत के वनपर्व में इस कथा का आरंभ अत्यन्त ही सरल ढंग से किया गया है। द्रौपदी पाण्डवों के साथ परस्पर वार्तालाप के क्रम में युधिष्ठिर को युद्धार्थ प्रेरित करने के लिए उत्तेजक वचन कहती है किन्तु भारवि ने कथा का आरम्भ वनेचर के आगमन से किया है जिसे युधिष्ठिर ने दुर्योधन की शासन–व्यवस्था जानने के लिए गुप्तचर के रूप में भेजा था। यह कल्पना कवि की नितान्त मौलिक है। युधिष्ठिर का विश्वासपात्र वनेचर दुर्योधन–विषयक सब समाचार जान कर युधिष्ठिर के पास द्वैतवन में ब्रह्मचारी के छद्म वेष में आता है,और सभी सूचनाओं से अवगत कराता है। युधिष्ठिर प्राप्त सूचनाओं को अपने भाईयों सहित द्रौपदी को बतलाते हैं। वनेचर वृत्तान्त के पश्चात् किरातार्जुनीय के प्रथम सर्ग की कथा महाभारत की कथा से बिल्कुल समानता रखती है। इसके अतिरिक्त दोनों ही कथाओं में द्रौपदी ने जो पाण्डवों की दुर्दशा तथा अपनी दयनीय दशा का वर्णन कर युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उकसाया है, अत्यधिक समानता है। किन्तु दोनों स्थलों में उक्ति की भिन्नता है। महाभारत में द्रौपदी कहती है– 'धर्मराज! दुष्ट और पापात्मा दुर्योधन को हम सबको दुःख में देखकर तनिक भी दुःख नहीं होता। महाराज! उस दुष्ट ने आपको केवल मृग–चर्म धारण कराकर वन में भेजा। आपके जुए में हारने पर उसने सभा में सबके सामने आपसे कटुवाक्य कहे। मृग–चर्म ओढ़कर आपके वन प्रस्थान करते समय पापिष्ठ दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन की आँखों में एक भी आँसू न आये, जबकि अन्य कौरवों के नेत्रों से शोकाश्रु बहने लगे थे। द्रौपदी का इस प्रकार का कथन किरातार्जुनीय में नहीं मिलता।

भारवि ने किरातार्जुनीय के प्रथम सर्ग में कुछ भावों का ग्रहण महाभारत से किया है किन्तु उन्हें प्रस्तुत किया है अपनी मौलिक कल्पनाओं के परिवेश में। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–महाभारत में द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है– 'जब मैं आपकी इस तृण–शय्या को देखती हूँ, तब मुझे आपकी बहुमूल्य शय्या का स्मरण हो आता हैः

इदं च शयनं दृष्ट्वा यच्चासीत् तेपुरातनम्।
शोचामि त्वां महाराज दुःखानहं सुखोचितम्।।"[1]

इसी भाव को भारवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है– द्रौपदी कहती है– 'नरेन्द्र! पहले आप बहुमूल्य शय्या पर विश्राम करते थे और वैतालिकों के द्वारा स्तुति और गायन रूप मांगलिक पाठ से निद्रा–त्याग करते थे। वे ही आप अब कुश–बहुला भूमि पर शयन करते हैं और शृगालियों के अमंगल–सूचक शब्द से जगाये जाते हैंः

"पुराधिरूढः शयनं महाधनं विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः।
यदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः।।"[2]

महाभारत में प्राप्त श्लोक तथा इस श्लोक में एक ही भाव व्यक्त किया गया है किन्तु वैतालिकों के मांगलिक पाठ और श्रृगालियों के अमंगलसूचक शब्दों के भेद–वर्णन द्वारा भारवि ने उसी भाव को चमत्कारपूर्ण बना दिया है। द्रौपदी युधिष्ठिर के कुशासन को देखकर पूर्वकाल में उनके रत्न–जटित हाथी दाँत के राज–सिंहासन का स्मरण कर दुःखी होती हैः

"दान्तं यच्च सभामध्य आसनं रत्नभूषितम्।
दृष्ट्वा कुशवृषीं चेमां शोको मां प्रदहत्ययम्।।"[3]

इसी भाव को भारवि ने अधिक सरस रूप में व्यक्त किया है। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है–'आपके जो चरण–युगल रत्न–जटित सिंहासन पर विश्रान्ति प्राप्त करते थे और अभिवादन के लिए झुकने वाले राजाओं की

मौलि–मालाओं के पुष्परज से रंजित होते थे, आज वे ही चरण हरिणों और ब्राह्मणों के द्वारा छिन्न कुशों पर विश्राम प्राप्त करते हैं:

"अनारतं यौ मणिपीठशायिनावरंजयद्राजशिरःस्रजां रजः।
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम्।।"[4]

महाभारत के वनवर्प में 28वें अध्याय से 35वें अध्याय तक द्रौपदी–युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिए लम्बे कथानक का आश्रय लिया गया है जिसे भारवि ने किरातार्जुनीय के केवल द्वितीय सर्ग में अपने कौशल द्वारा कथानक का संकोचन किया है। महाभारत में द्रौपदी और युधिष्ठिर के मध्य पाँच अध्यायों में दो बार कथनोपकथन दिखलाया गया है, परन्तु किरातार्जुनीय में द्रौपदी केवल प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिए वचन–प्रयोग करती हैं। द्वितीय सर्ग में भीम अपना वक्तव्य प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार इस प्रसंग में महाभारत तथा किरातार्जुनीय में पर्याप्त अन्तर है। महाभारत में भीमसेन 33वें अध्याय में अपना वक्तव्य आरम्भ करते हैं। वहाँ चार अध्यायों में भीमसेन और युधिष्ठिर के मध्य दो बार कथनोपकथन दिखलाया गया है, किन्तु किरातार्जुनीय में ऐसा नहीं है। यहाँ द्रौपदी के वचनान्तर द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में भीम अपना कथन प्रारम्भ करते हैं। तत्पश्चात युधिष्ठिर उन्हें समझाते हैं कि किस प्रकार प्रतिज्ञा–भङ्ग करना उनके लिए अनुचित है। महाभारत में भीमसेन का युधिष्ठिर के प्रति वक्तव्य 33वें तथा 36वें अध्याय में है। इन चारों अध्यायों के कथानक को भारवि ने किरातार्जुनीय के द्वितीय सर्ग में प्रस्तुत किया है। महाभारत में भीम युधिष्ठिर से कहते हैं कि–'आपको सत्पुरुषों के योग्य तथा अर्ध के अनुकूल राज–माग्र पर चलना चाहिए। यदि हम धर्म, अर्थ और काम से रहित होकर इस वन में ही पड़े रहें तो इससे क्या लाभ? दुर्योधन ने हमारा राज्य कपट से छीना है। हमारा राज्य अर्जुन द्वारा पूर्ण सुरक्षित था। आपकी असावधानी से हमारे देखते–देखते ही दुर्योधन ने हमारा राज्य छीन लिया। अब हम पशुवत् वन में रहते हैं। उपर्युक्त वर्णन किरातार्जुनीय में नहीं है। महाभारत और किरातार्जुनीय में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि महाभारत के भीम उच्छृंखल और अमर्यादित हैं। वे अपने लोगों पर आई हुई विपत्ति के विषय में युधिष्ठिर को ही दोषी ठहराते हुए कहते हैं:

"भवतोऽनवधानेन राज्यं नः पश्यतां हृतम्।
अहार्यमपि शक्रेण गुप्तं गाण्डीवधन्वना।।
कुणीनामिव बिल्वानि पङ्गूनामिव धेनवः।
हृतमैश्वर्यमस्माकं जीवतां भवतः कृते।।"[5]

यहाँ भीमसेन द्वारा प्रयुक्त 'भवतोऽनवधानेन' तथा 'भवतः कृते' भीम के युधिष्ठिर के प्रति क्रोध तथा अशिष्टता को प्रकट करते हैं। भीम का अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति इस प्रकार का वचन–प्रयोग उनका दुस्साहस ही प्रतीत होता है। इसके विपरीत किरातार्जुनीय के भीम अधिक मर्यादित एवं संयत हैं। महाभारत में भीम का कथन है कि प्रत्येक दृष्टि से युद्ध करना हमारे लिए उचित हैं, क्योंकि यदि उसमें हम मारे भी गए तो भी अच्छा है, उस अवस्था में हम वनवास के कष्टों से मुक्त हो जायेंगे। हमें उत्तम लाकों की प्राप्ति भी होगी और यदि हमलोग युद्ध में विजयी हुए तो हम राज्य करेंगे। भीम का कथन है कि यदि हम यहाँ वन में धर्म का अनुष्ठान करना चाहें तो उसके लिए भी धन आवश्यक है ओर हम लोग ब्राह्मणों की भाँति भिक्षावृत्ति द्वारा धन–संग्रह भी नहीं कर सकते इसलिए हमें पराक्रम द्वारा ही धन–संचय के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। यदि आप पराक्रम का आश्रय न लेकर क्षात्रधर्म का परित्याग करेंगे तो संसार में आपका उपहास होगा। किरातार्जुनीय में भीम के वचन सुनकर युधिष्ठिर उनको समझाते हैं कि एक बार प्रतिज्ञा करके, उससे पराङ्मुख होना ठीक नहीं है। यहाँ युधिष्ठिर ने बताया है कि किस प्रकार प्रारब्ध उनके विपरीत है। किस प्रकार द्यूतपटु शकुनि ने उन्हें जुए में पराजित किया, किस प्रकार दुर्योधन ने सब शर्त्तों को स्वीकार कर जुआ खेला और उसमें हारे और किस प्रकार उन्होंने सबके समक्ष प्रतिज्ञा की, इन सबका वर्णन किरातार्जुनीय में नहीं है।

इसी समय युधिष्ठिर ने भीम से यह भी कहा–'भीमसेन! यदि तुम्हें वीरोचित कर्म करना था तो तुम उसी समय कर सकते थे, जिस समय तुमने अपनी परिघी के समान भुजाओं का स्पर्श कर मेरे हाथ भस्म कर डालना चाहे थे

ओर अर्जुन ने तुम्हें रोका थाः

''तदैव् चेद् वीर कर्माकरिष्यो यदा द्यूते परिघं पर्यमृक्षः।
बाहू दिधक्षन् वारितः फाल्गुनेन किं दुष्कृतं भीम तदाभविष्यत्।।"[6]

कवि ने अति संक्षेप में भीम के वचनों के सार को किरातार्जुनीय में प्रस्तुत किया है। भीम के वचनों को सुनकर युधिष्ठिर उन्हें समझाते हैं कि हमें शान्ति के मार्ग का ही अवलम्बन करना चाहिए। युधिष्ठिर का मत है कि यदि इस समय हम प्रतिज्ञा भङ्ग कर आक्रमण न करें तो अवधि समाप्त होने पर सब राजा हमारी सहायता अवश्य करेंगे। भारवि ने अपनी कुशलता से महाभारत के 9 अध्यायों में आने वाले लम्बे कथानक को केवल द्वितीय सर्ग में सन्निविष्ट किया है।

किरातार्जुनीय में महर्षि व्यास का आगमन उस समय होता है, जब युधिष्ठिर भीम को समझा रहे थे। व्यास के आगमन तथा पाण्डवों द्वारा उनके सत्कार का वर्णन महाभारत में केवल दो श्लोकों दिया गया है। किरातार्जुनीय में इसका विस्तार किया गया है। यहाँ द्वितीय सर्ग के अन्तिम भाग में व्यास के आगमन तथा पाण्डवों द्वारा उनके सत्कार किये जाने का वर्णन है। तृतीय सर्ग के आरम्भ में पुनः व्यास का वर्णन है। किरातार्जुनीय में युधिष्ठिर मुनि से उनके आगमन का प्रयोजन पूछते हैं। महाभारत में इस प्रकार का वर्णन नहीं है। वहाँ मुनि व्यास अपने आगमन का प्रयोजन स्वयं ही बतला देते हैं। किरातार्जुनीय में व्यास युधिष्ठिर से कहते हैंः 'दुर्योधन के पास द्रोणाचार्य प्रभृति योद्धागण हैं। उनको जीतने के लिए जिन दिव्यास्त्रों की आवश्यकता है, उनकी प्राप्ति के लिए मैं अर्जुन को एक मन्त्र बतलाता हूँ, जिससे अर्जुन उग्र तपस्या करके पाशुपत अस्त्र प्राप्त कर भीष्म, द्रोण, तथा कर्णादि का नाश करने में समर्थ होंगे।' इसके पश्चात् उल्लेख है कि किस प्रकार युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर अर्जुन व्यास के सम्मुख उपस्थित हुए, किस प्रकार व्यास ने वह योगविधि अर्जुन को बतलाई ओर कहा कि – 'अब तुम मेरे कथनानुसार हाथ में शस्त्र धारण कर मन्त्र, जप, आहार–परित्याग और अभिषेकपूर्वक ऋषियों की वृत्ति को धारण करों जिस पर्वत पर इन्द्र की प्रसन्नता के लिए तुम्हें तपस्या करनी है, उस पर्वत पर यह यक्ष तुम्हें क्षण–मात्र में पहुँचा देगा।'

"अनेन योगेन विवृद्धतेजा निजां परस्मै पदवीमयच्छन्।
समाचराचारमुपात्तशस्त्रो जपोपवासाभिषवैर्मुनीनाम्।।
करिष्यसे यत्र सुदुश्चराणि प्रसत्त्ये गोत्रभिदस्तपांसि।
शिलोच्चयं चारुशिलोच्चयं तमेष क्षणान्नेष्यति गुह्यकस्त्वाम्।।"[7]

ऐसा कहकर व्यास अन्तर्हित हुए और वह यक्ष वहाँ उपस्थित हो गया। इस प्रसङ्ग में महाभारत तथा किरातार्जुनीय में यह अन्तर है कि महाभारत में व्यास युधिष्ठिर को 'प्रतिस्मृति' नाम्नी विद्या सिखाते हैं, युधिष्ठिर उसका मनन करते हैं और फिर वे वह विद्या अर्जुन को सिखाते हैं।

किरातार्जुनीय में व्यास युधिष्ठिर के प्रति इस बात का उल्लेख तो करते हैं कि मैं गुप्त मन्त्र अर्जुन को सिखाने के लिए उपस्थित हुआ हूँ, किन्तु वे मन्त्र को सीधे अर्जुन को सिखा देते हैं। महाभारत में उल्लिखित 'प्रतिस्मृति विद्या' का किरातार्जुनीय में उल्लेख नहीं है। विद्यादान के पश्चात् महाभारत और किरातार्जुनीय दोनों ही में व्यास के अन्तर्हित होने का उल्लेख है। इस स्थल में किरातार्जुनीय में नवीनता यह है कि यहाँ व्यास के अन्तर्हित होने के साथ–साथ एक यक्ष उपस्थित होता है। यहाँ भारवि ने मौलिक।रिवर्तन किया है। यक्ष की कल्पना महाभारत में नहीं है। महाभारत में पाण्डवों के द्वैतवन से काम्यक–वन जाने का उल्लेख है। यहाँ यह उल्लेख है कि पाण्डव जब काम्यक वन गए तो उनके साथ वेदपाठी ब्राह्मण, मन्त्री तथा सेवक भी थे। किरातार्जुनीय में पाण्डवों के काम्यक–वन–गमन का उल्लेख नहीं है। द्वैतवन में भी पाण्डवों के साथ कौन–कौन लोग थे, इसका कोई उल्लेख किरातार्जुनीय में प्राप्त नहीं होता। किरातार्जुनीय से हमें केवल इतना ज्ञात होता है कि द्वैतवन में पाँचों पाण्डव और द्रौपदी थीं। भारवि ने पाण्डवों के काम्यक–वन गमन को क्यों छोड़ा–इसका कारण यह कारण सम्भव है कि अर्जुन के तप करने के लिए इन्द्रकील पर्वत जाने और पाशुपतास्त्र प्राप्त कर युधिष्ठिर के पास लौटने वाले कथानक में काम्यक वन के उल्लेख का कहीं अवसर ही नहीं आता इसलिए कवि ने प्रसङ्ग को समग्र रूप से छोड़ दिया।

किरातार्जुनीय में यक्ष की उपस्थिति का उपन्यास कवि की अपनी मौलिक कल्पना है। महाभारत में अर्जुन युधिष्ठिर की आज्ञा शिरोधार्य कर स्वयं इन्द्रकील पर्वत जाते हैं।

किरातार्जुनीय में यक्ष उन्हें इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचा देता है। यक्ष के उपस्थित होने पर जब अर्जुन इन्द्रकील के लिए प्रस्थान करने लगे तब उनके चारों भाइयों ने शोक का अनुभव किया। उस समय अर्जुन का अवलोकन करने के लिए द्रौपदी का अभिलाष व्यक्त था तो भी उसने हिमकण से युक्त कमल के सदृश अश्रुपूर्ण अपने नेत्रों को अपशकुन हो जाने के भय से निमीलित नहीं किया। अर्जुन को द्रौपदी ने शत्रु–कृत पराभव का, अपने पराक्रम को प्रदर्शित न करने का तथा अपने अस्त्रों के प्रयोग न करने का स्मरण दिलाया। इस प्रकार अनेक प्रकार से द्रौपदी ने अर्जुन के उत्साह की वृद्धि कर इन्द्रकील प्रस्थान के लिए उन्हें विदा दी और प्रार्थना की कि भगवान् इन्द्र आपके मार्ग में आने वाले विघ्नों को दूर करें तथा आप अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त कर शीघ्र ही यहाँ लौटें और हमारे मनोरथ को सफल करें। अनन्तर अर्जुन ने कवच धारण कर तलवार, धनुष और तरकस लेकर यक्ष–निर्दिष्ट मार्ग से इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या के लिए प्रस्थान किया। अर्जुन के प्रस्थान–काल में स्वर्ग में देवताओं ने दुन्दुभि बजाई, जिससे सम्पूर्ण दिशायें गूँज उठीं। देवताओं ने पुष्प–वृष्टि कीः

"उदीरिता तामिति याज्ञसेन्या नवीकृतोद्ग्राहितविप्रकाराम्।
आसाद्य वाच स भृश दिदीपे काष्ठामुदीचीमिव तिग्मरश्मि।।"[8]

अर्जुन के इन्द्रकील प्रस्थान करते समय द्रौपदी जिन बातों का स्मरण दिलाकर अपना दुःख प्रकट करती है वे बातें महाभारत और किरातार्जुनीय में लगभग एक–सी हैं। अन्तर केवल इतना है कि भारवि ने उन्हीं बातों को अलङ्कृत शैली में प्रस्तुत किया है यथा द्रौपदी अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को अपशकुन के भय से निमीलित नहीं करती, क्योंकि यात्रा के समय स्त्री का आँसू बहाना यात्रा को विफल कर देता है। एक स्थल पर किरातार्जुनीय की द्रौपदी कहती है कि 'जो सज्जनों की रक्षा करने में समर्थ हो, वही क्षत्रिय है। जिसकी कर्म करने (संग्राम में कार्य करने) की शक्ति हो, उसी का नाम कार्मुक है। यदि इन दोनों प्रकार की व्युत्पत्तियों के होते हुए भी व्युत्पत्ति का अर्थ सुसंघटित नहीं होता (अर्थात् ये दोनों क्षत्रिय और कार्मुक अपने अवयवार्थ के अनूकूल कार्य करने में असमर्थ पाये जाते हैं) तो व्याकरणशास्त्र के अनुसार इन शब्दों की व्युत्पत्ति करके इनका साधन करना सब व्यर्थ हैः

"स क्षत्रियस्त्राणसहः सतां यस्तत्कार्मुकं कर्मसु यस्य शक्तिः।
वहन् द्वयीं यद्यफलेऽर्थजाते करोत्यसंस्कारहतामिवोक्तिम्।।"[9]

महाभारत में अर्जुन के उग्र तप को देखकर महर्षिगण के पिनाक–पाणि शिव के पास जाने, अर्जुन के तप का कारण पूछने तथा शिव के यह कहने पर कि वे अर्जुन के मनोरथ को जानते हैं और वे अर्जुन के मनोरथ को पूर्ण करने आज ही जायेंगे, का उल्लेख है। किरातार्जुनीय में अर्जुन के उग्र तप को देखकर इन्द्रकील–पर्वतवासी तपस्वियों के इन्द्र के प्रति गमन तथा स्वचिन्ता–प्रदर्शन का वर्णन है। बाद में इन्द्र के द्वारा अर्जुन के तप की परीक्षा के लिए अप्सराओं तथा गान्धर्वों के भेजने का वर्णन है। इस सन्दर्भ में महाभारत ओर किरातार्जुनीय में अन्तर इस प्रकार हैः

महाभारत में ऋषि–गण अर्जुन के तप से व्यथित हो शिव के पास जाते हैं और शिव तत्काल ही अर्जुन के मनोरथ को पूर्ण करने की बात कह देते हैं। किरातार्जुनीय में अर्जुन के उस तपोवैभव को देखकर वनेचर तपस्वि–गण अपने यथेच्छ आहार–विहार में क्लेश का अनुभव करते हुए इन्द्र के पास जाते हैं और अर्जुन के तप के विषय में कहते हैं। तदनन्तर इन्द्र अप्सराओं तथा गन्धर्वों के भेजे जाने का प्रसङ्ग समग्ररूपेण कवि की कल्पना है। इस प्रकार षष्ठ सर्ग से द्वादश सर्ग तक की कथा पूर्णरूपेण कवि की कल्पना पर आधारित है। यहाँ पर भारवि ने कथा को एक नया मोड़ दिया है। महाभारत में शिव अर्जुन के मनोरथ को पूर्ण करने के विषय में कहते हैं। अनन्तर शिव अर्जुन की परीक्षा के लिए जाते हैं, वराह पर शिव और अर्जुन बाण–प्रहार करते हैं। दोनों का युद्ध होता है और अन्त में शिव प्रसन्न होकर पाशुपत–अस्त्र अर्जुन को प्रदान करते हैं, किन्तु इस छोटे कथानक को भारवि ने अपनी प्रतिभा से बढ़ाया है।

अप्सराओं तथा गन्धर्वों का इन्द्रकील–प्रस्थान, उनकी रति–केलि, सूर्यास्त, चन्द्रोदयादि का वर्णन, उनके द्वारा अर्जुन के तप में विघ्नोपस्थापन, अनन्तर उनका इन्द्र के पास लौटना, पुनः इन्द्र का मुनि–वेश धारण कर अर्जुन की परीक्षा के लिए इन्द्रकील आना, प्रसन्न होकर महादेव की आराधना के लिए अर्जुन से कहना, अर्जुन की तपस्या से सन्तप्त हो महर्षियों का शिव के समक्ष जाना आदि प्रसङ्ग पूर्ण रूप से मौलिक है। इन सब के सन्निवेश द्वारा कवि महाकाव्य के नियमों का भी पालन करने में समर्थ हुआ है। महाभारत के सुविस्तृत कलेवर में अर्जुन की तपस्या तथा पाशुपतास्त्रप्राप्ति एक बहुत छोटी–सी कथा है, परन्तु किरातार्जुनीय महाकाव्य का पूर्ण कलेवर इसी पर आधारित है इसलिए इस कथा में कवि ने यत्र–तत्र परिवर्तन किए हैं। इन परिवर्तनों तथा नये–नये प्रसङ्गों के सन्निवेश का कारण यह भी है कि जिससे महाकाव्य में पाँचों संधियों की यथोचित योजना हो सके।

शंकर की आराधना के लिए अर्जुन के तप करने, अर्जुन के तप से भयभीत ऋषियों के शिव के निकट गमन तथा शङ्कर द्वारा उनके प्रति सान्त्वना प्रदान किये जाने का वर्णन दोनों ही ग्रन्थों में एक सा है। अन्तर केवल यह है कि भारवि ने शिव का विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। महाभारत में शिव केवल इतना कहते हैं कि वे अर्जुन के मनोरथ को जानते हैं और आज ही वे उनके मनोरथ को पूर्ण करेंगे। किरातार्जुनीय में शिव अपनी सम्पूर्ण योजना ही ऋषियों को बतला देते हैं कि किस प्रकार अर्जुन शत्रु से अपने वैर का बदला लेने के लिए मुझे प्रसन्न करने के लिए तप कर रहा है, किस प्रकार देव–कार्य–रत इसको देखकर विघ्न–बाधा डालने के लिए छल से वराहरूप को धारण कर मूक दानव इसको मारना चाहेगा, किस प्रकार किरात–वेष–धारी मेरे द्वारा मारा जायगा और किस प्रकार अर्जुन का और मेरा मृगया–कलह प्रारम्भ होगा, आदि। दोनों ही ग्रन्थों में महादेव के किरात का वेष धारण कर अर्जुन के आश्रम में आने का वर्णन है। दोनों में उल्लेख है कि शिव के साथ उनके प्रमथ–गण तथा किरात सेना भी थी। अन्तर केवल यह है कि महाभारत में पार्वती के भी किरात स्त्री का वेष धारण कर शिव के साथ आने तथा अन्य स्त्रियों के भी उनके साथ आने का वर्णन है। यह वर्णन किरातार्जुनीय में नहीं है। दोनों ही ग्रन्थों में मूक दानव पर शिव तथा अर्जुन द्वारा बाण–प्रहार किये जाने का उल्लेख है। महाभारत में अर्जुन वराह रूपधारी मूक दानव को देखकर उसे मारने का निश्चय करते हैं। किरातार्जुनीय में अर्जुन मूक दानव को देखकर अनेक प्रकार के तर्क करते हैं तथा अन्त में उसे मारने का निश्चय करते हैं। दोनों ही ग्रन्थों में अर्जुन केव पराक्रम को देखकर शिव के प्रसन्न होने का वर्णन है। दोनों ही स्थलों पर शिव के प्रसन्न होकर अपने वास्तविक रूप में प्रकट होने का वर्णन है, परन्तु जिस घटना के अन्त में शिव प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं, वह दोनों में भिन्न है।

महाभारत में अर्जुन जब शिव के पिण्ड पर पुष्प–माला चढ़ाकर यह देखते हैं कि वह किरात के कण्ठ में पड़ी हुई है, तब अपने वास्तविक रूप में प्रकट होते हैं। किरातार्जुनीय में बाहु–युद्ध करते–करते जब अर्जुन आकाश में उठे हुए शिव के चरणों को पकड़ लेते हैं, तभी आशुतोष अपने वास्तविक रूप में आकर अर्जुन को हृदय से लगा लेते हैं। महाभारत में शिव के प्रकट होने पर पार्वती भी साथ हैं, परन्तु किरातार्जुनीय में पार्वती का उल्लेख नहीं है। अर्जुन पाशुपतास्त्र–प्राप्ति रूप वर माँगते हैं, अन्त में शिव उस पाशुपतास्त्र के विषय में आवश्यक सब बातों तथा उसका प्रयोगादि बतलाकर अर्जुन को वह अस्त्र प्रदान करते हैं। महाभारत में पाशुपतास्त्र के वर्णन का पर्याप्त विस्तार किया गया है। किरातार्जुनीय में अर्जुन शिव–स्तुति करने के पश्चात् शिव से स्वयं प्रार्थना करते हैं–'संग्राम–काल में जिस अस्त्र–सम्पत्ति से मैं विजयी बन सकता हूँ, वह अस्त्र–विद्या आप मुझे प्रदान करें:

"श् आस्तिक्यशुद्धमवतः प्रियधर्म धर्मं
धर्मात्मजस्य विहितागसि शत्रुवर्गे।
सम्प्राप्नुयां विजयमीश यया समृद्धया
तां भूतनाथ विभुतां वितराहवेषु।।"[10]

अनन्तर शिव पाशुपतास्त्र को धारण करते हुए उन्हें धनुर्वेद पढ़ाते हैं। इसके बाद भगवान् धनुर्वेद अर्जुन के समक्ष उपस्थित होते हैं और अर्जुन में धनुर्वेद का आगम हो जाता है:

"इति निगदितवन्तं सुनुमुच्चौर्मघोनः

प्रणतशिरसमीशः सादरं सान्त्वयित्वा।
ज्वलदलनपरीतं रौद्रमस्त्रं दधानं
धनुरुपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश।।
स पिङ्गाक्षः श्रीमान् भुवनमहनीयेन महसा
तनुं भीमां बिभ्रत्त्रिगुणपरिवारप्रहरणः।
परीत्येशानं त्रिः स्तुतिभिरुपगीतः सुरगणैः
सुतं पाण्डोर्वीरं जलदमिव भास्वानभिययौ।।"[11]

महाभारत में पाशुपतास्त्र–प्रदान का प्रसङ्ग पर्याप्त विस्तार से वर्णित है, किन्तु किरातार्जुनीय में इसका अति संक्षेप में वर्णन हुआ है। दोनों ही ग्रन्थों में शिव के प्रसन्न होकर पाशुपतास्त्र प्रदान करने के समय प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों का सुन्दर वर्णन है। महाभारत में यह वर्णन पाशुपतास्त्र प्रदान के बाद और किरातार्जुनीय में शिव के प्रसन्न हो प्रकट होने के बाद प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपजीवक–उपजीव्य काव्य के साम्यदृवैषम्य के अध्ययनोपरांत यह स्पष्ट है कि महाभारत के वनपर्व के सताइसवें अध्याय से लेकर इकतालीसवें अध्याय तक कि कथा, जो उपजीव्य है किरातार्जुनीय का, वह नीरस है जिसे उपजीवक काव्य ने सहज और रसपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। कथा में जो रसाकर्षण मिलता है वह भारवि की काव्य प्रतिभा का हीं प्रतिफल है। कलेवर में थोड़ी बहुत भिन्नता है, परन्तु कथा की पृष्ठभूमि बिल्कुल समान है। किरात वेशधारी भगवान् शिव और अर्जुन के बीच हुए युद्ध का वर्णन महाभारत में अति संक्षेप में है, परन्तु किरातार्जुनीय में विस्तारपूर्वक इसका वर्णन किया गया है। त्रयोदश सर्ग से अष्टादश सर्ग तक युद्ध का सांगोपांग वर्णन हुआ है जिसमें कवि भारवि को पूर्ण सफलता मिली है।

सन्दर्भ सूची

1. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर (संवत् 1982) *महाभारत वनपर्व,* स्वाध्याय मंडल (वैदिक अनुसन्धान केंद्र), वलसाड, अध्याय 27, श्लोक 3–9, पृ. 131।
2. शास्त्री, रामप्रताप त्रिपाठी (संवत् 2028) *किरातार्जुनीय महाकाव्य,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1/8, पृ. 21।
3. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर (संवत् 1982) *महाभारत वनपर्व,* स्वाध्याय मंडल (वैदिक अनुसन्धान केंद्र), वलसाड, 27/11, पृ. 131।
4. शास्त्री, रामप्रताप त्रिपाठी (संवत् 2028) *किरातार्जुनीय महाकाव्य,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1/40, पृ. 22।
5. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर (संवत् 1982) *महाभारत वनपर्व,* स्वाध्याय मंडल (वैदिक अनुसन्धान केंद्र), वलसाड, 33/6, पृ. 167।
6. वही, 34/16/पृ. 179।
7. शास्त्री, रामप्रताप त्रिपाठी (संवत् 2028) *किरातार्जुनीय महाकाव्य,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 3/28–29/पृ. 65।
8. वही, 3/57–60/पृ. 77।
9. वही, 3/48/पृ. 74।
10. वही, 18/43/पृ. 423।
11. वही, 18/44–45/पृ. 424।

****